कला का स्वरूप एवं तत्व सिद्धांत

डॉ० संगीता गौरंग
एसोसिऐट प्रोफेसर, संगीत विभाग
के०वी०ए० डी०ए०वी० कॉलेज फॉर वुमन
करनाल (हरियाणा)

सारांश

प्रस्तुत लेख में कला, रंगमंच एवं संगीत संबधी तत्वों को सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य के रूप में विवेचित करने का प्रयास किया गया है। इसके अन्तर्गत कला का अर्थ, परिभाषा, कला के तत्व, कला का क्रमिक विकास चरण, पश्चात्य एवम् भारतीय दृष्टिकोण आदि महत्वपूर्ण सिद्धांतों का स्पष्टीकरण करने का प्रयास किया गया है।

शोध पत्र का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार हैः

डॉ० संगीता गौरंग,

''कला का स्वरूप एवं तत्व सिद्धांत''

शोध मंथन,
सितम्बर 2017,
पेज सं0 258–261
http://anubooks.com/?page_id=581
Artcile No. 38

कला

कला अन्तरात्मा की अभिव्यक्ति है। किसी भी कार्य को पूर्ण कुशलता से करना ही कला है। कला शब्द की व्युत्पत्ति कल धातु से निश्पन्न हुई है। इसका अर्थ हैं चलना, गति, स्पन्दन आदि। एक विद्वानानुसार कला शब्द की उत्पत्ति 'कल' धातु से हुई है। जिसका अर्थ है–सुन्दर व मधुर। कला शब्द की सिद्धि 'ला' धातु से हुई है जिसका अर्थ है। प्राप्त करना। अतः कला का अर्थ सुन्दरता को प्राप्त करना है।"[1]

कला की परिभाषा

विभिन्न भारतीय विद्वानों एवम् पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार कला का स्परूप एवं चित्रण निम्नवत हैः–

प्राचीन संस्कृताचार्यो ने कला की कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी। उन्होंने कला के सैद्धान्तिक विवेचन की अपेक्षा कला के व्यवहारिक पक्ष की ओर ही विशेष रूचि प्रकट की है।[2] इसलिये उन्होंने काव्य अथवा साहित्य को कला की श्रेणी के अन्तर्गत नही रखा। "नाटयशास्त्र में भरतमुनि ने सभी विधाओं, कलाओं और शिल्प को काव्य का अगांगी मात्र कहा है।" भर्तृहरि ने भी साहित्य और कला को पृथक माना है।"[3] भारतीय शास्त्रों में कला का विवेचन संकुचित अर्थो में हुआ जिसमें कला का अर्थ आन्तरिक सौन्दर्य की अनुभूति न मान कर, केवल बाह्म कौशल, चमत्कार, निपुणता एवं चातुर्य की प्रधानता माना है। संस्कृत विद्वानों ने उस समय कलाओं की संख्या 64 निश्चित की थी परन्तु उनमें काव्य नहीं था। रविन्द्र नाथ टैगोर के अनुसार, "कला में मनुष्य बाह्म वस्तुओं की नही, स्वानुभूति की अभिव्यक्ति करता है। कला में सत्यम्–शिवम्–सुन्दरम् इन तीनों की प्रतिष्ठा होनी चाहिए।"[4] कला एक आध्यात्मिक भाव हैं जिसमें कृतिकार अपने कृतिव में रूप को पकड़ता–पहचानता है, पुलकित और आनन्दित होता है इसमें अपूर्णता–नवीनता आश्चर्य–आह्लाद–आलोक पाकर सन्तुष्ट और प्रसन्न होता है।"[5] महात्मा गाँधी के अनुसार "कला से जीवन का महत्व है यदि कला जीवन को सुमार्ग पर न लाये तो वह क्या कला हुई।"[6] "कला मनुष्य के विचारों और भावों को प्रकट करने की एक भाषा है। सच्ची कलायें वह है जो मानव की आत्मा से प्रकट होती है।"[7] मैथिलीशरण गुप्त ने अभिव्यक्ति में कुशलता और सुन्दरता को कला की संज्ञा दी है। जबकि आचार्य शुक्ल के अनुसार एक अनुभूति को दूसरे तक पहुँचाना ही कला है। प्रसाद के अनुसार ईश्वर की कतित्व शक्ति का जो संकचित रूप मनुष्य में मिलता है उसी का विकास कला है।"[8] "कला की सार्थकता इसी में है कि वह किसी न किसी रूप में व्यक्ति के लिए कल्याणकारी होनी चाहिए।"[9]

पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार

भारत की अपेक्षा पश्चिमी देशों में कला के सैद्धान्तिक पक्ष पर विस्तृत विवेचन हुआ है। पाश्चात्य काव्य लक्षणों में काव्य को कला के अन्तर्गत रखा गया है। काव्य को कला की श्र की श्रेणी में रखने का मूल कारण यह है कि काव्य में भी चित्रकला, मूर्तिकला एवं संगीत आदि कलाओं की तरह अभिव्यक्ति की उत्कृष्ट इच्छा होती है। बेन जॉन्सन के अनुसार, "कविता और चित्र एक ही प्रकार की कलाएँ है और दोनों ही अनुकरण में संलग्न रहती है। कविता शब्द चित्र है तो चित्र

मूक कविता।"[10] फायड के अनुसार, "हृदय की दमित वासनाओं का उभरा हुआ रूप ही कला है।"[11] अरस्तु के अनुसार, "कला प्रकृति का अनुकरण करती है। जबकि प्लोटिनस के विचार में कला यथार्थ के मूल्यों और आदर्श की व्याख्या का प्रत्यक्षीकरण करती है।"[12] टाल्यस्टाय ने अपनी पुस्तक कला क्या है में लिखा, "अपने हृदय में उत्पन्न भावनाओं को क्रिया, रेखा, वर्ण, ध्वनि आदि के माध्यम से दूसरे के हृदय में पहुँचा देना ही कला का कार्य है।"[13]

उपरोक्त भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों द्वारा व्यक्त की धारणाओं में कही समानता और कही विरोधाभास है परन्तु आधुनिक भारतीय विद्वानों में से अधिकाशंतयः काव्य को कला की श्रेणी में रखते हैं।

कला के तत्व

किसी भी कार्य अथवा विषय–वस्तु को कला की श्रेणी में रखने से पहले हम उसका आंकलन करते हैं कि कौन से ऐसे मूलभूत तत्व हैं जो उसे कला कहलाने योग्य बनाते हैं। मूख्यरूप से कला के तत्व निम्नलिखित हैं–

- निश्चित रूप अथवा आकार
- प्रमाण अथवा सन्तुलन
- भाव अथवा रसोत्पत्ति
- लावण्य अर्थात् सौन्दर्य।

कला का क्रमिक विकास चरण

कला की सर्जन प्रक्रिया के मुख्य चार लक्षण हैंः–

- आन्तरिक इच्छा का होना
- उक्त इच्छा की पूर्ति हेतू की गई तन्मयतापूर्ण चेश्टा
- इच्छा, चेष्टा और क्रिया का प्रतिफल कलाकृति
- सृजित कलाकृति का दर्शकरण पर पड़ने वाला प्रभाव

भारतीय दृष्टिकोण

भारतीय कलाओं का प्रयोजन एवं उद्देश्य आरम्भ से ही सत्यम्–शिवम्–सुन्दरम् जैसी कल्याणकारी भावनाओं से ओतप्रोत रही है। भारतीय विचारधारा अनादि काल से भगवत्, गुणगान को साहित्य–संगीत एवं रंगमंचीय कला में स्थान देती आयी है। वह सूक्ष्म की तह तक जाकर स्थल की ओर लौटती है। भारतीय दर्शन, आध्यात्म, विज्ञान, गणित, इतिहास, आयुर्वेद आदि सभी विषयों में बुद्धि एवं हृदय का अभूतपूर्व सम्मिश्रण है। वह जीवन को उसकी समग्रता, पूर्णता एवं अखण्डता में देखने की अभ्यस्त है। "सत्यम् से अभिप्राय है–यथार्थ, सत्य, विश्वस्त, खरा, पारमार्थिक सत्ता से युक्त, न्याय तथा धर्म संगत एवं शाश्वत युक्त हो। शिवम् से अभिप्राय है– जो शुभ, सुखदाता और मंगलकारी हो तथा सुन्दरम् से अभिप्राय है – जो सुन्दर तथा रूपवान हो।"[14] कलाकार अपनी बुद्धि द्वारा सत्य को प्रतिष्ठित कर उसे यथार्थ, विश्वस्त, खरा, न्यायसंगत एवं धर्मसंगत बनाता है, फिर उसमें भाव का सम्मिश्रण कर सजित कति को शिवत्व प्रदान कर

उसे शुभ, सुखदाता एवं मंगलकारी बनाता है। इन दोनों के सम्मिश्रण से प्राप्त प्रतिफल जो हर्ष का कारण हैं वही सुन्दर है। "गीता में भी सत्य, प्रिय और हितकारी वाणी की सराहना की गई है।"[15] भारतीय विचारधार वैदिक युग से लेकर आज तक वैज्ञानिक एवं धर्मसम्मत रही है उसने सत्यम्–शिवम्–सुन्दरम् को समन्वित रूप में देखा हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण सत्य को नग्न रूप में देखने का अभ्यस्त है किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि सत्य को न्याय संगत तथा धर्मसंगत बनाती है। शास्त्रों में मानव जीवन के चार पुरूषार्थ–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष बताए है। इसमें धर्म और मोक्ष की भावना से प्रेरित होकर किया गया कला–सर्जन ही सर्वश्रेष्ठ है।

संदर्भ

1. डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा, कला में संगीत, साहित्य और उदात्त के तत्व, मेरठ (1994) पृ. 3
2. डॉ. अनुपम महाजन, भारतीय शास्त्रीय संगीत एवं सौन्दर्य शास्त्र, चंडीगढ़ (1993) पृ. 39
3. डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा : कला में संगीत साहित्य और उदात्त के तत्व, मेरठ (1994)
4. श्रीमती विजय लक्ष्मी जैन : संगीत दर्शन, जोधपुर (1989)
5. के. के. जसवाभी : कला की परख, पृ. 1
6. श्रीमती विजय लक्ष्मी जैन : संगीत दर्शन, जोधपुर (1989)
7. गोविन्द चातक : रंगमंच कला और दृष्टि, दिल्ली, 1976
8. डा. मिथिलेश शरण मित्तल / प्रो. उर्मिलेश कुमार शंखधार, साहित्यशास्त्र तथा समालोचन के सरल आयाम,
9. अनूप महाजन, भारतीय शास्त्रीय संगीत एवं सौन्दर्यशास्त्र, चण्डीगढ़ (1993),
10. डॉ. मिथिलेश शरण मित्तल / प्रो. उर्मिलेश कुमार शंखधार, साहित्यशास्त्र तथा समालोचन के सरल आयाम
11. डॉ. मिथिलेश शरण मित्तल / प्रो. उर्मिलेश कुमार शंखधार, साहित्यशास्त्र तथा समालोचन के सरल आयाम